संतोष ही परम सुख ळे

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

संतोष ह्रदय का वह भाव है जिसके जागरण से व्यक्ति परमधन की प्राप्ति का अनुभव करता है। उसे ऐसा लगने लगता है कि उसे सब कुछ मिल गया और अब कुछ भी पाना शेष नहीं है। लोग भाव में अभाव महसूस करते हैं; किन्तु संतोषी व्यक्ति अभाव में भाव महसूस करता है। उसके पास कुछ नहीं है या अल्प है फिर भी वह परम धन की अनुभूति करता है और इस धन के मिल जाने पर अन्य सारे धन उसके लिए धूल के समान हो जाते हैं। संतुष्टि परमं धनम् अर्थात् संतोष ही परम धन है। प्रायः सुख की आकांक्षा सभी को होती है। पतंगा भी सुख चाहता है और उसी सुख की चाहत में अपने आप को अग्नि में समर्पित कर जाता है, अर्थात् अपना प्राणान्त कर लेता है।

जीवन में संतोष आ जाने के बाद फिर किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं रहती है। उत्तमोत्तम सुख मिल जाने से कोई दूसरा सुख शेष नहीं रह जाता है। इच्छाएं कभी व्यक्ति को एक क्षण के लिए भी शांति से बैठने नहीं देतीं। मनुष्य एक इच्छा की पूर्ति करता है तो दूसरी इच्छा तैयार, दूसरी इच्छा की पूर्ति हुई कि तीसरी इच्छा तैयार रहती है। इस प्रकार इच्छाओं के जाल में मकड़ी की तरह उलझकर वह अपना अंत भी कर लेता है। फिर, ऐसी इच्छाओं से क्या लाभ जो व्यक्ति को न सुख से जीने दे और न चैन से मरने दे। गीता में कहा गया है–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्तमेव भूयः एवाभिवर्तते।।

कामनाओं की पूर्ति से कभी कामनाएं शांत नहीं होतीं। उसी तरह जिस तरह अग्नि में घी डालने से कभी अग्नि शांत नहीं होती। शांति जीवन की उस अनुभूति को कहते हैं, जहां सारे सुख समाहित होते हैं, मन स्थिर रहता है, इन्द्रियां बुद्धि के वशीभूत होती हैं। गीता में कहा गया है कि– जैसे सब तरफ से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र के प्रति नाना नदियों के

जल उसको चलायमान न करते हुए उसमें समा जाते हैं, वैसे ही स्थिर बुद्धि पुरुष के प्रति सम्पूर्ण भोग किसी प्रकार का विचार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं। भोगों को न चाहने वाला पुरुष परमशांति को प्राप्त होता है। गीता में कहा गया है–

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकारहित और स्पृहारहित होता है वह शांति को प्राप्त करता है। संतोष में परम सुख है। मनुष्य में अनेक गुण और अवगुण होते हैं। गुणों से समाज में मनुष्य की पहचान बढ़ती है और अवगुणों से वह समाज में निन्दा का पात्र होता है। जिस इंसान के पास संतोष है वह हमेशा खुश रहता है। उसे कभी किसी बात की कमी नहीं होती। हम सोचते हैं इतनी भाग–दौड़ की ज़िन्दगी में संतोष करके रहना कोई आसान काम नहीं। कितने व्यक्ति यह मानते हैं कि संतोष में सुकून छिपा है। संतोष करने से मन शांत होता है, खुशी मिलती है, मन को सुकून मिलता है। मस्तिष्क की मांसपेशियों को बेवजह तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। यदि चिंतन करना हो तो मस्तिस्क भी हमारा जबरदस्त साथ देता है, किन्तु बेकार की बातें सोचने से मस्तिस्क की ऊर्जा खत्म हो जाती है। इसलिए मन को शांत रखना बहूत ज़रूरी है।

जिसने भीड़ में सुकून खोज लिया वह व्यक्ति सचमुच जिंदगी को जी रहा होता है। भीड़ में सुकून खोजन का अर्थ है बाहर से प्रभावित हुए बिना आत्म साधना करना। आत्म साधना में जो व्यक्ति लीन हो जाता है, उसे भीड़ तंत्र प्रभावित नहीं करता। सच्चा साधक वही है जो प्रतिकूल परिस्थितियों को भी अनुकूल बना लेता है। हम इस तरह छोटी–छोटी खुशियाँ बटोरकर मन में सुकून ला सकते हैं। इससे हमारी आत्मा को संतोष मिलता है और यहीं संतोष हमारे शरीर की रक्तवाहानियों में खुशी का संचार करता है और हम प्रफुल्लित हो उठते है, जिंदगी हमारे लिए आसान हो जाती है।

आसमान को छू लेने की तम्मना करो लेकिन पाँव जमीन पर ही टिकाये रखो। सिर्फ बाहरी सुख के पीछे ही मत भागो, मन को भी खुश रखो। मन की सुंदरता, मन का संतोष, आने वाले दिनों में खुशी का पैगाम लेकर आता है। ऐसे तो मनुष्य के अंदर अनेको भाव हैं, जैसे दया, क्षमा, सहनशीलता आदि। लेकिन यह भी हमारे मन का एक छोटा सा बड़ा ही प्यारा सा भाव है "संतोष" जिसके अंदर खुशियाँ छुपी है जो हमारे मन को सुकून देता है। परमेश्वर से जो

कुछ मिला है उसी का प्रसन्न रहकर भोग करना चाहिए, ताकि किसी प्रकार का लोभ या तृष्णा न सताए।

परम सुख चाहने वाले व्यक्ति को अत्यन्त संतोषी स्वभाव का तथा अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण रखने वाला होना चाहिये। संतोष ही समस्त सुखों का मूल है, और असंतोष अनेक दुःखों का कारण होता है। मनुष्य की आकांक्षाओं का कोई अन्त नहीं होता है, वे क्रमशः लोभ और तृष्णा में परिवर्तित हो जाती हैं। जीवन का सुख आकांक्षाओं को सीमित रखने में ही है, जिस के लिये संतोषी होना परमावश्यक है, अन्यथा सब कुछ होते हुए भी मनुष्य अतृप्त ही रहता है। मनुस्मृति में कहा गया है–

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।

संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।।